प्रसंगवश:

आलोक मेहता

कहां हैं किसान और मजदूर नेता

गाजियाबाद क्षेत्र के एक जमीनी राजनीतिक नेता ने एक सार्वजनिक समारोह के गेट पर रोककर मुझसे शिकायत की – 'बेईमानों की भीड़ में ईमानदारों की चर्चा करते हुए आपने चौधरी चरण सिंह का उल्लेख क्यों छोड़ दिया? आप तो पुराने पत्रकार हैं, उनके काम और ईमानदारी का अंदाज आपको रहा होगा?' अचानक इस तरह स्नेह और उलाहने के साथ अपरिचित व्यक्ति की टिप्पणी पर तत्काल कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। इतना ही कह पाया कि 'सच है, लिखते समय दिग्गज नेताओं को गिनाते समय ध्यान नहीं रहा।' लेकिन हां, निश्चित रूप से 1971 से 1980 के दौरान भारी राजनीतिक उथल-पुथल में उनसे मिलने, सुनने और दांवपेंच समझने के अवसर मिले थे। राजनीतिक विरोधी भी उनकी ईमानदारी और किसानों के लिए लगातार किए गए प्रयासों की सराहना करते थे। उनके साथ विवाद भी सदा जुड़े रहे। यही कारण है कि राजेंद्र बाबू या डॉ. राधाकृष्णन के साथ उनकी तुलना ठीक नहीं लगती। 1977 में जब वह जनता पार्टी की सरकार में गृह मंत्री बने, तब भी बड़ी सहजता से मुझ जैसे पत्रकार से मिलकर बेबाक बातचीत करते थे। उनकी सादगी और अनौपचारिकता का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि तुगलक रोड के अपने बंगले में वह शयन-कक्ष के पलंग के आईने के सामने खड़े होकर पुराने उस्तरे से दाढ़ी बनाते हुए भी हमसे बात करने लगते। पहले [illegible] अधिकार के साथ फटकार लगाते – 'तुम यंग पत्रकार मुझे जाट नेता-कुलक लॉबी' का नेता वगैरह क्यों लिखते हो? मैं देश के हजारों गांवों और वहां रहने वाले किसानों-मजदूरों का दर्द समझता हूं। उनके लिए लड़ता रहा हूं और लड़ता रहूंगा। तुम कोट-टाई पहनते हो, तुम्हें क्या मालूम गांवों और किसानों की हालत क्या है?' विनम्रता के साथ मेरा उत्तर होता – 'चौधरी साहब, दिल्ली में कोट-टाई पहनने से नॉर्थ ब्लॉक में घुसना आसान हो जाता है। मैं भी गांव में पला-बढ़ा और पढ़ा हूं। दादाजी और पिताजी की खेतीबाड़ी अब भी है।' चौधरी साहब हंसते हुए कहते – 'अच्छा बताओ, क्या पूछना है। [illegible] याद रखना, तुम लोगों से बात करने का मतलब यह नहीं कि मैं बड़े [illegible] अखबार मालिकों पर भी मेहरबान हो जाऊंगा या उनसे डर जाऊंगा। मैं किसी के अपराध बख्शने वाला नहीं हूं। इसी तरह सरकार में मंत्रालय कोई हो, मेरी प्राथमिकता किसान, खेतीबाड़ी और गांव रहने वाली है। इसी की बात करो।'

इसके बाद चौधरी चरण सिंह हर सवाल के जवाब देते। हां, जनता पार्टी के अन्य नेताओं के साथ चलने वाली खींचतान पर 'ऑफ द रिकॉर्ड' सारी कहानियां भी बता देते। मोरारजी देसाई और जगजीवन राम के साथ उनका टकराव लगातार चलता रहा। इमरजेंसी में जेल में रहने के कारण श्रीमती इंदिरा गांधी पर भी उनका आक्रोश अधिक था लेकिन इस संघर्ष को वह राजनीतिक मानते थे और कई बार इसे विरोधियों की खूबियां बताते हुए सराहना के साथ गड़बड़ी के लिए अफसोस जताते थे। फिर भी कोई शक नहीं कि 1967-68 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस से विद्रोह कर पहली संविद सरकार बनवाने और 1979 में जनता पार्टी तोड़ कांग्रेस से हाथ मिलाने के कारण उन्हें 'दलबदल' के 'महाप्रणेता' के रूप में विवादास्पद माना जाता रहा। इसी तरह पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उनके राजनीतिक वर्चस्व के चलते एक वर्गविशेष के कुछ लोगों द्वारा दलितों से भय के साथ ज्यादतियां करने की घटनाओं से भी चौधरीजी की छवि बिगड़ती थी। बहरहाल, उत्तर प्रदेश ही नहीं, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक जैसे राज्यों के किसान कृषि क्षेत्र में चौधरी चरण सिंह द्वारा चलाए गए अभियानों तथा सरकारी कार्यक्रमों की तारीफ करते हुए याद करते मुझसे मिले। लेकिन इसे दुर्भाग्य कहा जाएगा कि चौधरी चरण सिंह के बाद उनकी ही तरह किसानों का कोई बड़ा नेता देश को नहीं मिला। चौधरी देवीलाल भी जमीनी थे लेकिन उन पर अनियमितताओं और भ्रष्टाचार के आरोप लगते रहे। कांग्रेस पार्टी, समाजवादी पार्टी, जनता दल (यू) ही नहीं, दोनों बड़ी कम्युनिस्ट पार्टियों में भी बड़े पैमाने पर किसानों को एकजुट करने वाला नेतृत्व नहीं दिखाई देता। किसानों के नाम पर राजनीति करने वाले नेता अवश्य हैं लेकिन वे क्षेत्रीय प्रभाव वाले हैं। उनकी राष्ट्रीय पहचान और ताकत नहीं है। इससे भी अधिक खराब पहलू यह है कि जातीय आधार पर किसानों और गांवों के हितों की बात होने लगी। केंद्र और राज्य सरकारों ने कृषि क्षेत्र के लिए अरबों रुपयों की योजनाएं बनाई तथा क्रियान्वित भी कीं। कई राज्यों में अनियमितताओं और भ्रष्टाचार के कारण किसानों को समुचित लाभ नहीं मिला। किसी क्षेत्र के प्रभावशाली किसान अधिक संपन्न हुए और उसी इलाके के थोड़ी जमीन वाले किसान अधिक गरीब होते चले गए। गांवों में राजीव गांधी से मनमोहन सिंह तक की केंद्र सरकारों या राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारों ने पंचायतों को अधिक अधिकार दिए लेकिन कांग्रेस या अन्य पार्टियों के कुछ नेताओं ने सहकारी क्षेत्र की तरह पंचायतों के पंचों-सरपंचों को हेराफेरी करना सिखाया। उन्हें पंचायत के बजट से निजी कमाई के रास्ते सिखाए। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र या कर्नाटक जैसे राज्यों में उद्योगों अथवा आवास योजनाओं के लिए किसानों को जमीन बेचने के लिए प्रोत्साहित किया गया। कुछ हद तक यह पहल ठीक थी लेकिन किसानों के परिवारों को वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था नहीं की गई। उपजाऊ जमीन बेचने वाले किसानों ने गांव में ही आलीशान मकान बना लिए और ट्रैक्टर के बजाय महंगी गाड़ियां-मोटर साइकिलें खरीद लीं। एक-दो सालों में ही आमदनी का स्रोत सूखने से किसान परिवारों के युवा अपराधी बनने लगे। इस दृष्टि से किसानों के हितों की रक्षा करने वाले नेता गांवों से गायब हैं। अब तो किसानों के नाम पर कॉरपोरेट किसान नेता राजनीतिक गलियारों में प्रभावशाली हो गए हैं। उद्योग-व्यापार संगठन सी.आई.आई. और फिक्की कॉरपोरेट किसान नेताओं के साथ खेती के आधुनिकीकरण पर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करने लगे हैं। स्वाभाविक है, इनका लाभ बड़े संपन्न किसानों को मिल सकता है। छोटे-मंझोले किसान बीज, उर्वरक, पानी, बिजली, फसल की सही कीमत इत्यादि के लिए अंधेरे में भटक रहे हैं। बैंकों से कर्ज लेने की सुविधाएं पिछले वर्षों के दौरान बढ़ाई गई लेकिन न तो कर्ज चुकाने की अनुकूल परिस्थितियां बनीं और न ही उनकी समस्याओं का समाधान बताने वाला नेतृत्व मिला। किसानों की तरह ही भूमिहीन श्रमिकों या कल-कारखानों के श्रमिकों के लिए राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं दिखाई दिया। राजनीतिक दलों के अधिकांश श्रम संगठन दलीय स्वार्थों के आधार पर संघर्ष या समझौते करते हैं। मधु लिमये, मधु दंडवते, मामा बालेश्वर दयाल, होमी दाजी, राजनारायण की तरह किसानों-मजदूरों के बीच काम करने वाले नेता राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य से गायब हैं। यह स्थिति बेहद खतरनाक है। आज भी देश की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है और असली भारत गांवों में ही है। उनकी दशा-दिशा सुधारने के लिए कर्मठ ईमानदार और समर्पित नेतृत्व लोकतंत्र को जीवित रखने के लिए जरूरी है।